**ओ३म्**

**‘आर्य सुधारक थे महात्मा बुद्ध’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

बौद्ध मत के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध के बारे में यह माना जाता है कि वह आर्य मत वा वैदिक धर्म के आलोचक थे एवं बौद्ध मत के प्रवर्तक थे। उन्हें वेद विरोधी और नास्तिक भी चित्रित किया जाता है। हमारा अध्ययन यह कहता है कि वह वेदों को मानते थे तथा ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व में उसी प्रकार से विश्वास रखते थे जिस प्रकार की कोई वेदों का अनुयायी रखता है। उपलब्ध प्रमाण यह भी इंगित करते हैं कि वह वैदिक धर्म के सुधारक होने से आर्यत्व को धारण किए थे। इस लेख में आर्य जगत के उच्च कोटि के विद्वान पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की पुस्तक **“बौद्धमत और वैदिक धर्म”** के आधार पर हम प्रकाश डाल रहे हैं जिससे महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित सत्य पक्ष सामने आ सके। इस लेख की सामग्री उन्हीं की पुस्तक से साभार ली गई है। यह सर्वविदित है कि वेद और वैदिक धर्म गुण, कर्म व स्वभावानुसार वर्णाश्रम व्यवस्था को मानते हंै। गुण-कम-स्वभावानुसार चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र हैं। इन चारों वर्णों का स्वरूप महाभारत काल के बाद विकृत होकर इसका स्थान जन्मना जाति व्यवस्था ने ले लिया। इतना ही नहीं, स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित कर इन समाज के प्रमुख अंगों को वेद के सुनने तक पर अमानवीय यातनायें देने का विधान हमें प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। महाभारत काल के बाद पूर्णतः अहिंसक यज्ञों में भी पशुओं की हिंसा की जाने लगी। अतः असत्य व मिथ्या कर्मकाण्ड का विरोध तो किसी न किसी ने अवश्य ही करना था। बहुत से तत्कालीन ब्राह्मणों ने भी विरोध किया ही होगा परन्तु उनका समाज पर प्रभाव इतना नहीं था कि वह इतिहास में सुरक्षित रखा जाता। इसी कारण इतिहास में ऐसे प्रयासों का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। आईये, इस स्थिति पर श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड जी के विचार जान लेते हैं।

पं. धर्मदेव जी लिखते हैं कि पक्षपातरहित दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्ध के समय में अनेक सामाजिक और धार्मिक विकार उत्पन्न हो गये थे, लोग सदाचार, आन्तरिक शुद्धि, ब्रह्मचर्यादि की उपेक्षा करके केवल बाह्य कर्मकाण्ड व क्रिया-कलाप पर ही बल देते थे। अनेक देवी देवताओं की पूजा प्रचलित थी तथा उन देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये लोग यज्ञों में भेड़ों और बकरियों, घोड़ों की ही नहीं, गौओं की भी बलि चढ़ाते थे। **वर्णव्यवस्था को जन्मानुसार माना जाता था और जाति भेद उच्च-नीच भावना को उत्पन्न करके भयंकर रूप धारण कर रहा था।** उच्चकुल में जन्म के अभिमान से लोग अपने को उच्च समझते और अन्यों को विशेषतः शूद्रों को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। बहुत से लोगों को अस्पृश्य भी समझा जाता था। ये उच्चकुलाभिमानी अपने अन्दर ब्राह्मणोचित गुणों को धारण करने का कुछ भी प्रयत्न न करते थे और वस्तुतः उनमें से बहुतों का जीवन बड़ा पतित और अधोगामी था तथापि अन्यों को हीन दृष्टि से देखते हुए उन्हें लज्जा न आती थी। पवित्र जीवन निर्माण की ओर ध्यान न देते हुए भी वे शुष्क दार्शनिक चर्चा में अपना समय अवश्य नष्ट करते थे **और बौद्ध ग्रन्थों तथा ब्रह्मजाल सुत्त आदि में जो उनके दार्शनिक विचारों का वर्णन पाया जाता है उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे प्राचीन ऋषियों के शुद्ध विचारों से बहुत दूर जा चुके थे तथा भाग्यवादी, अकर्मण्यतावादी, भौतिकवादी, नित्यपदार्थवादी तथा अक्रियावादी बने हुए पाप-पुण्य, कर्म नियम, सदाचार आदि की कोई परवाह न करते थे।** उदाहरणार्थ अजित केशकम्बल नामक एक प्रसिद्ध दार्शनिक, महात्मा बुद्ध का समकालीन था जिस का मत यह था कि--दान-यज्ञ-हवन यह सब व्यर्थ हैं, सुकृत दुष्कृत कर्मों का फल नहीं मिलता। यह लोक-परलोक नहीं। दान करो यह मूर्खों का उपदेश है। जो कोई आस्तिकवाद की बात करते हैं वह उनका तुच्छ (थोथा) झूठ है। मूर्ख हों चाहे पण्डित, शरीर छोड़ने पर सभी उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं मरने के बाद कुछ नहीं रहता। ऐसी ही विचारों वाले अनेक विचारक और दार्शनिक उन दिनों में हुए।

वेदों में जन्मना जाति व्यवस्था व मनुष्यों में जाति भेद का कहीं किंचित वर्णन नहीं है। वैदिक धर्म में वर्णव्यवस्था को गुण-कर्म-स्वभावानुसार बताया गया है। **”अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुधा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः” (ऋग्वेद 5/60/5)** इत्यादि वेद-मन्त्रों में यही स्पष्ट उपदेश है कि सब मुनष्य परस्पर भाई हैं। जन्म के कारण कोई बड़ा व छोटा, ऊंचा या नीचा नहीं है। परमेश्वर सबका एक पिता और प्रकृति व भूमि सबकी एक माता है। ऐसा मानकर आचरण करने से ही सबको सौभाग्य की प्राप्त होती है और वृद्धि होती है। वेदों में ब्राह्मण क्षत्रियादि शब्द यौगिक और गुणवाचक हैं। **जो ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर और वेद को जानता है और उनका प्रचार करता है, वह ब्राह्मण है।** क्षत व आपत्ति से समाज और देश की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापारादि के लिये एक देश से दूसरे देश में प्रवेश करनेवाले वैश्य और **‘शु-आशु द्रवति अथवा शुचा द्रवति’** इस व्युत्पत्ति के अनुसार सेवार्थ इधर-उधर दौड़नेवाले और उच्च ज्ञानरहित होने के कारण शोक करने वाले शूद्र कहलाते हैं। **‘उपह्वहे च गिरीणां, संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत।।‘ (यजुर्वेद 26/15)** आदि वेद मन्त्रों में यही बतलाया गया है कि **पर्वतों की उपत्यकाओं, नदियों के संगम इत्यादि रमणीक प्रदेशों में रहकर विद्याध्ययन करने और (धिया) उत्तम बुद्धि तथा अति श्रेष्ठ कर्म से मनुष्य ब्राह्मण बन जाते हैं। अथर्ववेद मन्त्र 19.62.1** ‘**प्रियं मा कृणु, देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत, उत शूद्र उतार्ये।‘** में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र सबके साथ प्रेम करके सबके प्रेम पात्र बनने का उपदेश है। वेदों की इस प्रकार की अनेक सौहार्दपूर्ण शिक्षाओं को महात्मा बुद्ध जी के जीवनकाल में वैदिक धर्मी ब्राह्मणों ने भुला दिया गया था।

बौद्ध साहित्य के ग्रन्थ **‘सुत्त निपात वसिट्ठ सुत्त’** में वर्णन है कि वसिट्ठ (वसिष्ठ) और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मणों का जातिभेद विषय में परस्पर विवाद हुआ। उस विवाद का विषय वसिष्ठ ने महात्मा बुद्ध को इस प्रकार बताया कि भारद्वाज कहता है कि ब्राह्मण जन्म से होता है और मैं कहता हूं कि वह कर्म से होता है। इस पर उन्होंने महात्मा बुद्ध से व्यवस्था मांगी। वसिष्ठ ने कहा कि आप ज्ञान की दृष्टि से सम्पन्न हैं, अतः आपसे हम पूछते हैं कि ब्राह्मण जन्म से होता है वा कर्म से। इस पर महात्मा बुद्ध ने यह बताते हुए कि—**‘जीव जन्तुओं में एक दूसरे से बहुत-सी विभिन्नताएं और विचित्रताएं पाई जाती हैं और उनमें श्रेणियां भी अनेक हैं। इसी प्रकार वृक्षों और फलों में भी विविध प्रकार के भेद-प्रभेद देखने में आते हैं, उनकी जातियां भी कई प्रकार की हैं। देखो न! सांप कितनी जातियों के हैं? जलचरों और नभचरों के भी असंख्य स्थिर भेद है जिनसे उनकी जातियां लोक में भिन्न-भिन्न मानी जाती हैं।’ उन्होंने कहा--यथा** **‘एतेसुजासीसु, लिंग जातिमयं पुथु। एवं नात्थि मनुस्सेसु, लिंग जातिमयं पुथु।। न केसेहि न सीसेन, न कन्नेहि नाक्खिहि। न मुखेन न नासाया न ओट्ठेहि भमूहि वा।। न जिह्वाया न अंसेहि, त उदरेन न पिट्ठिया। न सोणिया न उरसा, न सम्बाधे न मेथुने।। लिंग जातिमयं नेव, यथा अन्नेसु जातिषु।। (सुत्त निपात श्लोक 607-610)।‘** इन श्लोकों में महात्मा बुद्ध द्वारा कहा गया है कि **मनुष्यों के शरीर में तो ऐसा कोई भी पृथक् चिन्ह (लिंग भेदक चिन्ह) कहीं देखने में नहीं आता। उनके केश, सिर, कान, आंख, मुख, नाक, गर्दन, कन्धा, पेट, पीठ, हथेली, पैर, नाखून आदि अंगों में कहां हैं ऐसी विभिन्नताएं?** जो मनुष्य गाय चराता है उसे हम चरवाहा कहेंगे, ब्राह्मण नहीं। जो व्यापार करता है वह व्यापारी ही कहलाएगा और शिल्प करनेवाले को हम शिल्पी ही कहेंगे, ब्राह्मण नहीं। दूसरों की परिचर्या करके जो अपनी जीविका चलाता है वह परिचर ही कहा जाएगा, ब्राह्मण नहीं। अस्त्रों-शस्त्रों से अपना निर्वाह करनेवाला मनुष्य सैनिक ही कहा जाएगा ब्राह्मण नहीं। अपने कर्म से कोई किसान है तो कोई शिल्पकार, कोई व्यापारी है तो कोई अनुचर। कर्म पर ही जगत् स्थित है। सुत्त निपात के 650 वें श्लोक **’न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा होति अब्राह्मणो। कम्म्ना ब्राह्मणो होति, कम्मना होति अब्राह्मणो।।‘** **में महात्मा बुद्ध कहते है कि न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है, न जन्म से अब्राह्मण।** **कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है और कर्म से अब्राह्मण।** इसी बौद्ध ग्रन्थ के अन्य श्लोकों में महात्मा बुद्ध व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि **मैं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व बाह्मणी माता से उत्पन्न को ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो अहंकारी होता है। जो त्यागी है मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं। जो दूसरों की दी हुई गालियों और हिंसा को अदुष्टभाव से सहन करता है, क्षमा ही जिसका बल है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं। जो क्रोध रहित है, व्रतधारी है, शील (सदाचार) सम्पन्न है, जितेन्द्रिय और मन को जीतनेवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं। जो जल में कमल की तरह कामों में निर्लेप रहता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं। जो गम्भीर बुद्धिवाला, मेधा सम्पन्न, मार्ग-अमार्ग व कर्तव्याकर्तव्य जानने में निपुण है। जो अत्यन्त उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है, मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं। तप, ब्रह्मचर्य (वेद और ईश्वर का ज्ञान), संयम और दम (इन्द्रिय और मन को वश में रखना) इनसे मनुष्य ब्राह्मण बनता है और यही उत्तम ब्राह्मणत्व है। धम्मपद के ब्राह्मण वग्ग में महात्मा बुद्ध जी ने जो उपदेश किया है कि न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।** इस प्रकार अनेक वेदानुकूल सारगर्भित वर्णन बौद्ध साहित्य में अन्यत्र भी उपलब्ध है।

ब्राह्मण वर्ण का उपर्युक्त लक्षण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह सभी लक्षण जन्मना ब्राह्मण सन्तानों में नहीं घटते, अतः उनका स्वयं को ब्राह्मण मानना व कहना महात्मा बुद्ध जी शिक्षाओं के विपरीत है। महात्मा बुद्ध जी की इन शिक्षाओं व विचारों से उन लोगों के मत का पूर्णतया खण्डन हो जाता है जो यह मानते हैं कि महात्मा बुद्ध ने **‘ब्राह्मण’** शब्द का प्रयोग बौद्ध भिक्षु के लिए ही किया और उनके अनुसार ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन आदि की आवश्यकता नहीं है। यहां वेदाध्ययन से सम्पन्न ब्राह्मणों के लिए वेदान्त पारग, ब्रह्मवादी आदि शब्दों का प्रयोग है। **महात्मा बुद्ध के वर्णाश्रम धर्म विषयक उपर्युक्त उपदेश उन्हें वैदिक धर्म का सच्चा अनुगामी ही सिद्ध करते हैं।** इससे यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि **महात्मा बुद्ध वेद व वर्णाश्रम धर्म के विरोधी नहीं अपितु वह महर्षि दयानन्द से कुछ समानता रखने वाले आर्य सुधारक थे।** यह बात अलग है कि बाद में उनके अनुयायियों ने उनकी शिक्षाओं को भली प्रकार से न समझकर व स्वार्थवश उसके विपरीत व्यवहार किया हो।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**